राष्ट्रीय सहारा
नई दिल्ली, बृहस्पतिवार, 18 जून, 2009

कीटनाशकों का कहर झेलती जमीन

मुद्दा

पंकज चतुर्वेदी

हमारे देश में हर साल कोई दस हजार करोड़ रुपए के कृषि-उत्पाद खेत या भंडारगृहों में कीटों के कारण नष्ट हो जाते हैं। इस बर्बादी से बचने के लिए कीटनाशकों का इस्तेमाल बढ़ा है। सन 1950 में जहां इसकी खपत 2000 टन थी, वहीं आज कोई 90 हजार टन जहरीली दवाएं देश के पर्यावरण में घुल-मिल रही हैं। इसका करीब एक तिहाई हिस्सा विभिन्न सार्वजनिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों के अंतर्गत छिड़का जा रहा हैं। 1960-61 में केवल 6.4 लाख हेक्टेयर भूमि में कीटनाशकों का छिड़काव होता था जबकि 1988-89 में यह क्षेत्रफल 80 लाख हो गया। आज इसके करीब डेढ़ करोड़ हेक्टेयर होने की संभावना है। ये कीटनाशक जाने-अनजाने पानी, मिट्टी, हवा, जन-स्वास्थ्य और जैव विविधता को बुरी तरह प्रभावित कर रहे हैं। इसके अंधाधुंध इस्तेमाल से पारिस्थितिकीय संतुलन बिगड़ रहा है और अनेक कीट व्याधियां फिर से सिर उठा रही हैं। कई कीटों की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ गई है उन पर दवाओं का कोई असर नहीं है। इसके विपरीत पर्यावरण के मित्र कीटों की कई प्रजातियां जड़मूल से नष्ट हो गई हैं। एक बात और कि इस्तेमाल की जा रही दवाइयों का महज 10 से 15 फीसद ही असरकारक होता है। शेष जहर मिट्टी, भूगर्भ जल और नदी-नालों का हिस्सा बन जाता है।

कनार्टक के मलनाड इलाके में सत्तर के दशक में लकवे से मिलता-जुलता रोग फैला जिसमें शुरू में पिंडलियों और घुटनों में दर्द हुआ और फिर रोगी खड़े होने लायक भी न रहा। 1975 में हैदराबाद के नेशनल इंस्टीट्यूट आफ न्यूट्रिशन ने चेता दिया था कि 'एंडमिक एमिलियिन आर्थराईटिस आफ मलनाड' नामक इस बीमारी का कारण ऐसे धान के खेतों में पैदा हुई मछली व केकड़े खाना है जहां कीटनाशकों का इस्तेमाल हुआ हो। इसके बावजूद वह्यं धान के खेतों में पैराथिया और एल्ड्रिन का बेतहाशा इस्तेमाल जारी है और यह बीमारी एक हजार से अधिक गांवों में फैल चुकी है।

दिल्ली, मथुरा, आगरा जैसे शहरों में यमुना के पानी में डीडीटी और बीएसजी की मात्रा जानलेवा स्तर पर पहुंच गई है। यहां उपलब्ध शाकाहारी और मांसाहारी दोनों किस्म की खाद्य सामग्री में इन कीटनाशकों की खासी मात्र पाई गई है।

टमाटर के कीड़ों का मारने के लिए बाजार में रोगर हाल्ट, सुपर किलर, रेपलीन और चैलेंजर नामक दवाएं मिलती हैं। इन पर दर्ज है कि इनका प्रयोग एक फसल पर चार-पांच बार से अधिक न हो लेकिन यह वैज्ञानिक चेतावनी बहुत महीन अक्षरों में अंग्रजी में दर्ज होती है, जिसे पढ़ना-समझना आम किसान के वश में नहीं। लिहाजा किसान इसका छिड़काव 25 से 30 बार कर देता है जिससे लोग गंभीर बीमारियों की चपेट में आ जाते हैं। इसकी पुष्टि भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद भी कर चुकी है। गेंहू को कीटों से बचाने के लिए मेलाथियान पाउडर मिलाया जाता है। इसका जहर गेंहू को धो कर भी दूर नहीं किया जा सकता।

अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के फार्माकोलॉजी विभाग के एक अध्ययन बताता है कि मच्छर, कॉकरोच मारने वाली दवाओं का कुप्रभाव सबसे ज्यादा 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों पर पड़ता है। ग्रीन पीस इंडिया की एक रिपोर्ट बताती है कि कीटनाशक बच्चों के दिमाग को घुन की तरह खोखला कर रहे हैं। संस्था ने बच्चों के मानसिक विकास पर कीटनाशकों के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए देश के छह अलग-अलग राज्यों के जिलों में शोध किया। जिसमें बताया गया है कि कीटनाशकों के अंधाधुंध और अवैज्ञानिक इस्तेमाल से भोजन और जल में रासायनिक जहर की मात्रा बढ़ रही है। इससे बच्चों का मानसिक विकास अपेक्षाकृत धीमा हुआ है।

सनद रहे कि विदेशी पारिस्थितिकी के अनुकूल दवाइयों के भारतीय भूमि के अनुरूप जांच के लिए कोई प्रावधान नहीं है। अनेक खतरनाक कीटनाशकों पर विकसित देशों ने अपने यहां तो पाबंदी लगा दी है, लेकिन व्यावसायिक हित साधने के लिए उन्हें भारत भेजना जारी रखा है। असुरक्षित कृषि रसायनों से पर्यावरण बचाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा 12 कीटनाशकों पर पूर्ण प्रतिबंध और 13 के इस्तेमाल पर कुछ पाबंदियों लगाई गई हैं। सल्फास, डीडीटी और बीएचसी जैसे कीटनाशक सस्ते होने के कारण छोटे किसानों में बेहद लोकप्रिय हैं। हालांकि इनकी बिक्री पर भी प्रतिबंध है, लेकिन सरकारी महकमों के लिए खरीद के नाम पर इनके कारखानों के लाइसेंस धड़ल्ले से जारी होते हैं और इनमें बना माल दूसरे नामों से बेरोकटोक पीछे के दरवाजे से बाजार में भेज दिया जाता है। यह विडंबना है कि हरित क्रांति का झंडा लहराने वालों ने हमारे खेतों व उत्पादों को विषैले रसायनों का गुलाम बना दिया है और आज इसके चौतरफा नुकसान हो रहे हैं। एक ओर खेती की लागत बढ़ रही है तो दूसरी ओर जमीन बंजर होती जा रही है और लोगों की सेहत पर विपरीत असर पड़ रहा है।

राष्ट्रीय सहारा नई दिल्ली, शुक्रवार, 5 जून 2009

किसान और पर्यावरण की रक्षक टिकाऊ खेती

विश्लेषण

भारत डोगरा

रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं पर आधारित तकनीक आज सरकार के साथ किसानों को भी भारी पड़ रही है। सब्सिडी बढ़ने पर भी किसानों की कठिनाइयां कम होती नजर नहीं आतीं। एक तो सब्सिडी का लाभ किसानों की तुलना में उद्योगों को अधिक मिलता है, दूसरे रासायनिक खाद के अधिक उपयोग से मिट्टी के प्राकृतिक उपजाऊपन पर भी प्रतिकूल असर पड़ता है

केन्द्रीय सरकार के रसायन व खाद मंत्रालय ने कुछ समय पहले दावा किया था कि रासायनिक खाद पर सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी पिछले चार वर्षों में 15779 करोड़ रुपए से बढ़कर वर्ष 2007-08 में 40338 करोड़ रुपए तक पहुंच गई है। इतना ही नहीं, मंत्रालय ने दावा किया कि वर्ष 2008-2009 में सरकार रासायनिक खाद पर सब्सिडी को और तेजी से बढ़ा रही है। पर क्या इसका कोई बहुत सार्थक असर किसान के खेत पर नजर आ रहा है? देश में कहीं भी चले जाइए- किसान यही कहते नजर आएंगे कि खेती का खर्च बढ़ने के कारण उनकी कठिनाइयां बढ़ रहीं हैं।

वास्तव में रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं पर आधारित तकनीक आज सरकार के साथ-साथ किसानों को भी भारी पड़ रही है। इस तकनीक की प्रतिकूलता के कारण सब्सिडी बढ़ने पर भी किसान की कठिनाइयां कम होती नजर नहीं आतीं। एक समस्या तो यह है कि सरकार द्वारा दी जाने वाली सब्सिडी का लाभ किसानों की तुलना में उद्योगों को अधिक मिलता है, दूसरे रासायनिक खाद के अधिक उपयोग से मिट्टी के प्राकृतिक उपजाऊपन पर भी बहुत प्रतिकूल असर पड़ता है। आरंभ में कुछ उत्पादन अवश्य बढ़ता है पर बाद में रासायनिक खाद व कीटनाशकों का उपयोग बहुत बढ़ाने पर भी उत्पादन में मामूली वृद्धि ही हो पाती है या वह कम भी हो सकता है। यह भारत का ही अनुभव नहीं है। दुनिया के अनेक देशों में यही कहानी दुहराई गई है।

रासायनिक खाद व कीटनाशक दवाओं के अधिक उपयोग से मिट्टी को भुरभुरा और उपजाऊ रखने वाले किसान के बहुत ही महत्वपूर्ण मित्र केंचुए मर जाते हैं। कीटनाशक व जंतुनाशक दवाओं का बहुत ही कम अंश हानिकारक कीड़ों या अन्य जन्तुओं तक पहुचता है, इसके विपरीत यह आसपास के पर्यावरण को जहरीला बनाता है और किसान के मित्र पक्षियों व मित्र कीटों- जैसे तितली, भंवरे, मधुमक्खी आदि की क्षति करता है। कई बार हानिकारक कीड़े तो इन दवाओं से प्रतिरोधक शक्ति उत्पन्न कर लेते हैं, जबकि मित्र कीड़े मारे जाते हैं। कभी-कभी इन विषैली दवाओं का असर पूरे खाद्य चक्र में फैल जाता है, व इससे जुड़ी दुर्घटनाओं में कई मनुष्य भी मारे जाते हैं। रासायनिक खरपतवार नाशकों से भी ऐसी ही क्षति होती है।

अतः अब भारत समेत अनेक देशों में किसान खेती के वैकल्पिक तौर-तरीके आजमाने का प्रयास कर रहे हैं ताकि मिट्टी और पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले महंगे रासायनिक कीटनाशक व खाद के बिना अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सके। अच्छी खेती के कई उद्देश्य हैं जिन्हें एक साथ प्राप्त किया जा सकता है व इन प्रयासों में सफलता मिल भी रही है।

एक उद्देश्य तो यह है कि किसान को उत्पादन अच्छा मिले और खर्च कम हो। किसान परिवार की अपनी मेहनत चाहे बढ़ जाए पर उसकी बाहरी निर्भरता कम हो जाए और उसे हमेशा किसी का मुंह न ताकना पड़े। खेत की मिट्टी की गुणवत्ता अच्छी बनी रहे। खेती-किसानी के कार्य में तो मिट्टी को असली सोना कहा गया है। मिट्टी का प्राकृतिक उपजाऊपन बना रहेगा तभी खेती टिकाऊ होगी और वर्तमान के साथ भविष्य में भी आजीविका का आधार बनी रहेगी। खेत में उत्पादन की न केवल मात्रा उचित हो, अपितु उसकी गुणवत्ता भी अच्छी हो। इसमें कोई हानिकारक तत्त्व न हो। इस आधार पर किसान परिवार को बेहतर कीमत भी मिल सकेगी और उसके अपने स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। खेती ऐसी होनी चाहिए जिससे जल-स्रोत प्रदूषित न हों और न उनका दोहन क्षमता से अधिक हो। खेती के तौर-तरीके ऐसे हों जिनसे हानिकारक जंतुओं को दूर रखने में मदद मिले, साथ ही सामान्य पक्षियों और कीट-पतंगों के लिए खतरा पैदा न हो।

निश्चित ही इस तरह की सस्ती, टिकाऊ, बेहतर व उत्तम उत्पादन देने वाली और पर्यावरण की रक्षा करने वाली खेती के लिए काफी मेहनत करनी पड़ेगी। यह खेती और इससे मिला-जुला पशुपालन वहीं पनप सकेंगे जहां जल-संरक्षण व गांव की हरियाली बढ़ाने के लिए काफी काम होगा। इसके साथ कंपोस्ट खाद बनाने, उचित फसल-चक्र अपनाने, परंपरागत ज्ञान संचित करने, हानिकारक जंतुओं से बचाव की उचित तकनीक अपनाने, उपयोगी देसी बीजों व किस्मों को खोज निकालने में भी बहुत परिश्रम व निष्ठा की जरूरत होगी। पशुपालन बहुत महत्वपूर्ण है, व इसके लिए देसी अच्छी नस्लों की उपलब्धि व चरागाहों की बेहतर स्थिति भी जरूरी है।

इस संदर्भ में दो महत्वपूर्ण सवाल हैं जो आपस में एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। पहला सवाल तो यह है कि हमारे गांवों में जिस तरह का सामाजिक बिखराव नजर आ रहा है, उसमें क्या गांव समुदाय व विशेषकर युवा किसानों से यह उम्मीद की जा सकती है कि वे इतनी मेहनत और निष्ठा से कृषि-विकास का टिकाऊ रास्ता खोज निकालेंगे। दूसरा सवाल यह है कि क्या सरकार गांवों में ऐसा माहौल बनाने के अनुकूल नीतियां अपनाएगी।

इसमें सरकार की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो सकती है। यदि वह अपने बजट का उपयोग उल्टी-सीधी सब्सिडी के स्थान पर टिकाऊ खेती को प्रोत्साहन देने के लिए करे तो इस तरह के सार्थक कार्यों के लिए अरबों रुपए उपलब्ध हो सकेंगे। इससे मिट्टी की उर्वरता को बचाया और बढ़ाया जा सकेगा, पर्यावरण को बचाया जा सकेगा और किसान की वर्तमान व भावी दोनों पीढ़ियों को टिकाऊ लाभ मिलेगा।

इसके लिए जहां सरकार को बेहतर कृषि-नीति अपनानी पड़ेगी, वहीं गांवों के सामाजिक बिखराव को रोकना भी जरूरी होगा। आज समाज में शराब व हर तरह के नशे के प्रसार को रोकना, अन्य कुरीतियों को रोकना, जातिगत व अन्य तरह के भेदभाव को दूर करना, गांव की एकता को मजबूत करना व युवा तथा महिला शक्ति को सार्थक कार्यों से जोड़ना बहुत जरूरी है। इस तरह का समाज-सुधार जहां कई स्तरों पर राहत देता है, वहीं संतुलित व सार्थक आर्थिक विकास का मार्ग भी प्रशस्त करता है।

यह सच है कि आज निराशा व उद्देश्यहीनता गांवों में, विशेषकर युवाओं में अधिक नजर आती है और उनके द्वारा शहरों की ओर पलायन करने का रास्ता ही अधिक अपनाया जाता है। पर यदि सरकार द्वारा उचित नीतियां अपनाई जाएं, साथ ही गांव समाज को जोड़ने व एकता के प्रयास निष्ठा से हों तो अपने ही देश के कई उदाहरण गवाह हैं कि उम्मीद के दीप जलने में देर नहीं लगती है। ऐसे किसी भी प्रयास में निर्धन वर्ग को कभी भी उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। उनके लिए खेती, दस्तकारी या कुटीर उद्योगों की संभावनाएं अवश्य तलाशनी चाहिए। कृषि विकास को न तो कमजोर वर्ग की प्रगति से अलग किया जा सकता है और न समाज-सुधार के व्यापक प्रयासों से। सबका सहयोग प्राप्त करने वाले प्रेरणादायक माहौल में ही गांवों का संतुलित व टिकाऊ विकास हो सकेगा।